Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 18, Issue No. 6, October-2021, ISSN 2230-7540

महाकवि भास के पूर्वर्ती ग्रन्थों में वर्ण व्यवस्था

Smt. Nageeta Soni[1]* Dr. Ved Prakash Mishra[2]

[1] Research Scholar, Dr. C. V. Raman University, Kargi Road, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

[2] Professor, Head of Sanskrit Department, Dr. C. V. Raman University, Kargi Road, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

सार – ***भारतीय सामाजिक व्यवस्था केन्द्र ही वर्ण व्यवस्था है। इसलिए जब तक वर्ण व्यवस्था का स्वरूप, स्थिति, महत्व आदि का ज्ञान न हो तब तक भारतीय समाज का आधार को समझ पाना मुश्किल है। समाज संघटन व्यवस्था को यथोचित रूप से समझना और कार्यों का विभाजन उन-उन समाजिक संघटन पर निष्ठा होनी चाहिए। औचित्य मूलक कार्य विभाजन समाजिक संघटनों का स्वभाव, गुण, व्यवहार के आधार पर था। इन सब को लक्ष्य कर शास्त्रकारों के द्वारा गुण, कर्म आदि के आधार पर चार समूहों की कल्पना और उन समूहों को समझकर उसके सामाजिक कर्तव्यों एवं दायित्वों, क्रिया कलापों को निर्धारण किये है।***

----------X----------

महाभारत के आधार पर विचार करें तो क्या ब्राह्मणादि सभी वर्ण, वर्ण विहीन लोग थे? नहीं उनके कर्म ही उनकों नियत्रिंत करते थे-

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रहमामिदं जगत्।

ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्।। (1)

वैदिक मान्यतानुसार विराट पुरूष के विविध अंगो से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की उत्पति कहा गया है। (2) यहीं बातें विष्णु पुराण भी कहता है।(3) भगवान कृष्ण ने गीता में गुण, कर्म के आधार पर वर्ण विभाजन की बात कहीं है-

चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागषः।(4)

इस प्रकार गीता का वचन गुण, कर्म की ओर ही संकेत कर रहा है। महाभारत वर्ण विभाण में गुण, स्वभाव को सर्वस्व मानकर वर्ण भेद स्वीकार करता है, कामनाओं को अतिशय मानकर इच्छा पूर्ति और भोगादि में तल्लिन क्रोध, आवेश में संलिप्त अथवा अति उत्साह में पड़कर कठीन कार्यों को करना जिसमें राजसत्व पूर्ण कार्य करते हुए क्षत्रिय वर्ण हुए। परम्परागत स्वभाव के वशीभूत कृषि कार्य से जीविकोपार्जन में तल्लिन व्यक्ति को वैश्य की उपमा दी मिली। हिंसा, अप्रियकार्य, लुट कर जीविका चलाना, सभी प्रकार के कार्यों में रत तामस पूर्ण व्यवहार, पवित्रादि से रहित को शूद्र की श्रेणी में रखा गया। आरम्भ में ये सभी ब्राह्मण अर्थात् सत्वगुण से प्रेरित थे बाद में ये स्वभावानुसार तत्वत् वर्ण में परिवर्तित हो गये-

कामभोगप्रियास्तीणाः क्रोधनाः प्रियसहसाः।

व्यक्तधूर्मा रक्तांगास्ते द्विजाः क्षजतां गताः।।

गोजेभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युप जीविनः।

स्वथर्मान्ननुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गतः।।

हिंसानृतप्रियारूलुब्धाः सर्वकमेपिजीविनः।

कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्तेद्विजाः शूद्रतां गताः।।

इत्येतैः कर्मभिर्यस्ता द्विजावर्णान्तरं गताः।

धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते।। (5)

मानव परिस्थित्यानुसार काल की गति अथवा काल के वशीभूत अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है। फलस्वरूप अन्य वर्ण में परिवर्तन सम्भाव्य है। इसलिए कितनी भी विपत्ति आवे अपने मूल की रक्षा करनी चाहिए "श्रेष्ठं स्थानं समासाद्य तस्मात् रक्षेत पण्डितः"(6) यदि साहस पूर्ण कार्य करता है ब्राह्मणत्व को त्याग देता है तो निःसंदेयक्षत्रियत्व को प्राप्त होता है। अज्ञानता अथवा मोह के वशीभूत तत्कार्य करने से वहीं परिवर्तन सम्भाव्य है, अतः भक्ष्य अभक्ष्य, स्पर्श अस्पर्श, कृत्य अकृत्य आदि का सर्वदा ख्याल रखना चाहिए प्रमाद जो ऐसा करता है वह मनोभाव जन्म जन्मान्तर के लिए बन जाता है इसलिए अपने मूल की रक्षा आवश्यक है।

www.ignited.in

शूद्रकुल में जन्म प्राप्तकर यदि बुद्धिमानी पूर्वक वैश्यवर्णाचरण में तल्लिन हो, वह वैश्यवर्णापन्न हो जाता है- शूद्रो वैश्यों हि जायते, इसी प्रकार वैश्य वर्ण में जन्म प्राप्त मानव अग्नि होज करते हुए अवशिष्ट अन्न का उपयोग करते हुए क्षत्रियों की तरह यज्ञ, संस्कृति को पालन करने वाला क्षत्रियत्व को प्राप्त होता है। "स वैश्य: क्षत्रियकुले जायते नाज संशयः"। जो क्षत्रिय ब्राह्मणोंचित होकर अपने धर्म का पालन करना, ऋत्वानुसार करणीय कार्य, आतिथ्य सेवा, तथा यथानिर्दिष्ट ब्राह्मणाचित कार्य करते रहने पर क्षत्रिय भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है।(7)

ब्राह्मणत्व की प्राप्ति आत्यन्त तप से ही सिद्ध होता है, यहीं मोक्षादि की सिद्धि होती है-

ब्राह्मणत्वं हि दुष्प्राप्यं क्रच्छ्रेण साध्यते नरैः।

ब्राह्मण्यात्सकलं प्राप्यमोक्षं चापि मुनीश्वर।।(8)

लक्षण या स्वभाव के बारे में अनेक ग्रन्थों में विवरण मिलता है। मानव का स्वभाव ही उसके वर्ण को निर्धारण करता है। मनुस्मृतिकार कहते है- "जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्व द्विजोच्यते" यहां द्विज का अर्थ द्वितीय जन्म से है, वह जन्म संस्कार से उत्पन होता है। कहते है तब तक अध्ययन काल होता है सब सवर्ण होते है, अध्ययनान्तर- स्वभाव गुण ही उसका विभाग करता है। शिवपुराण में स्वभाव अथवा लक्षण का प्रतिपादन कुछ इससे देखने को मिलता है- इज्यायुध्दपणासेवा वर्तयन्तों व्यवस्थिताः।(9) यज्ञादि ब्राहमणों को युध्द, शासन क्षत्रियों का, व्यपारादि वैश्यों का सेवा आदि का कार्य शूद्रों को निर्धारण किया गया है।

किसी भवन का आधार उसका मजबूत स्तंभ होता है। यहीं स्तम्भ समाज पर भी लक्ष्य होता है। कोई भी वर्ण किसी से कम नहीं होता है। सभी मोक्षादि विद्या में तल्लिन रहेगें तो शासन कौन करेगा, व्यापार और सभी के हित के लिए कार्य कौन करेगा। यज्ञ का आयोजन में वेदयज्ञ, यज्ञ की रक्षा, यज्ञ के लिये धन की व्यवस्था, यज्ञ के लिए काष्ठादि की व्यवस्था इन बातों पर गौर करें तो चारों महत्वपूर्ण है, और इन्ही के आधार पर चारों की आवश्यकता पर बुद्धिमता पूर्ण विश्लेषण कर सकते है, अब उसका प्रतिफल सबके लिए बराबर किसी के लिए कम और ज्यादा नहीं है।

समाज को अनुशासित रखने के लिये वर्णाश्रम व्यवस्था अत्यन्त उपयोगी है, ऐसा न करने पर सामाजिक उच्छृंखलता बढेगी जिससे अभिचार दोष बढ़ने की आशंका बनी रहेगी। व्याभिचार दोष को नियंत्रित रखने के लिए वर्ण व्यवस्था अत्यन्त उपयोगी है, इनका कहना यदि सामाजिक संघटन का पालन न किया जाये तो इस लोक में अपयश और नरक में पतन का कारण होता है। विष्णुपुराण उस बात का समर्थन करते हुए कहता है-

वर्णाश्रमविरूद्धं च कर्म कुर्वन्ति ये नराः।

कर्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते।। (10)

आचार्य कौटिल्य जिन्होंने एक नया भारत की रचना की, सनातन प्रकाश स्तम्भ से दिशा दिया इनका कहना है वर्णाश्रम का पालन राजा को दण्ड पूर्वक पालन कराना चाहिए श्राजा दण्डेन पालितः।" (11) क्योकि जो समाज इसका पालन करता है वह कदापि कष्ट नहीं पाता, सर्वतो भावेन सुखी होता है-

व्यवस्थितार्यमर्यादा कृतवर्णाश्रमस्थितिः।

त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदतिन सीदति।। (12)

महाकवि भास अपने नाटको को लेकर उसका विषय वस्तु को लेकर अत्यंत प्रसिद्ध है। उनके सभी नाटकों का आश्रय रामायण और महाभारत है, तत्काल परिदृश्य के साथ लिपिबद्ध कर अपनी प्रतिभा विद्वता को सिद्ध किया है।

रामायण काल की बात करें, तो वाल्मीकिरामायण का अध्ययन करने पर यही बात दृष्टिपथ में आती है, कि सभी अपने-अपने वर्णाश्रम में तल्लिन थे। ब्राह्मण वर्ण सत्वगुणापेत यज्ञादि अध्यापनादि कार्यो में तल्लिन हुआ करते थे। क्षत्रिय प्रजापालन पूर्वक यज्ञादि में निरत। वैश्यगण व्यापार, पशुपालन पूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन। शूद्र वर्ग शिल्पादि कार्य में निरत हो द्विजादि की सेवा।

स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियः।

दानाध्ययनशीलाश्च संयताष्च प्रतिग्रहे।। (13)

इस प्रकार चातुर्वण्य की व्यवस्था समाज को नियंत्रित करने के लिए सृजन किया है, भागवान विराट पुरूष ने कार्यों का सम्यग् पतिपादन भी इसी से संभव है। अपने सामाजिक दायित्वों को पूर्ण करने के लिए प्रतिस्पर्धा का भाव हुआ करता था, यहीं स्वस्थ्य प्रतिस्पर्धा समाज के सर्वतोभाव से सुख शान्ति के लिए आवश्यक था। परस्पर आदर समभाव को दर्शाता है, सही मायने में पूर्वोक्त वर्णन से सभी एक दूसरे के पूरक है, इसका अभाव में ही अशांति का पर्याय होता है।

संदर्भ

1. महाभारत शान्तिपर्व

www.ignited.in

2. ऋ.सं. 10.90.12

3. वि.पु. 1.6.6

4. गीता 4.13

5. म.भा.शा. 188.11-14

6. उ.सं.अ. 21.3

7. उ.सं.अ. 21.1-15

8. शि.पु.पृ. 691

9. उ.सं.अ. 18/06

10. वि.पु.का भारत पृ. 58

11. अर्थशास्त्र

12. कौ.भा.वर्ष

13. वा.रा.बा.काण्ड षष्ठः सर्गः

Corresponding Author

Smt. Nageeta Soni*

Research Scholar, Dr. C. V. Raman University, Kargi Road, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh